

साहित्य और समाज

डॉ.पी.हरिराम प्रसाद

पिठापुर राजा शासकीय विद्यालय (स्वायत्ता)

काकिनाडा

Received: Aug. 2019 Accepted: Sep. 2019 Published: Oct. 2019

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है। इस का तात्पर्य यह है कि मनुष्य को अपना अस्तित्व बनाए रखने के लिए अन्य मनुष्यों के साथ रहने की परम आवश्यकता है। इस के लिए उसे अपने आसपास के मनुष्यों के साथ सामाजिक संबंध स्थापित करना ही पड़ता है। व्यक्तियों के इन्हीं पारस्परिक संबंधों के जाल को 'समाज' कहते हैं। सामाजिक संबंधों का आधार मनुष्य के जीवन की मूलभूत आवश्यकता है, जिन के कारण नाना प्रकार के स्वार्थ मनुष्य को कार्य करने के लिए प्रेरित करते हैं। मनुष्यों का जीवन इन्हीं स्वार्थों की दिशाओं के अनुसार बदलता रहता है। प्रसिद्ध समाजशास्त्री मैकाइवर तथा पेज के अनुसार "समाज चलनों और कार्य - विविधियों, प्रभुत्व और पारस्परिक सहयोग, उनके समूहों, मानव व्यवहार के नियंत्रणों और स्वच्छंदताओं की एक व्यवस्था है।" ¹ मानव अकेला नहीं रह सकता, अकेला रहना उस के लिए खैद के बराबर है। वह समूह में ही रह सकता है। समूहों का समुच्चय रूप ही समाज है। एफ. एच. गिडिंग्स के अनुसार " समाज स्वयं एक संग्रह है, एक संगठन है, औपचारिक संबंधों का सम्मिश्रण है।" ² समाज में हर व्यक्ति एक जैसा नहीं रह सकता। अच्छे, बुरे, नम्र, उग्र, स्वार्थ तथा परोपकारी आदि भिन्न प्रकारों, भिन्न प्रवृत्तियों और भिन्न प्रकृतियों के लोग रहते हैं। इन सब को एक सूत्र में बाँधने के लिए, व्यवस्थिति रूप देने के लिए और ढंग से जीने के लिए विविध विधान, आचार और संहिता प्रकाश में आएँ। विधि के समक्ष सब बराबर है। जो इस का अतिक्रमण करता है, वह दंडनीय है, आम आदमी से लेकर खास आदमी तक कोई इस का अपवाद नहीं हो सकता। मानव एक सामाजिक प्राणी ही नहीं, राजनैतिक प्राणी भी है। वह सुव्यवस्थित जीवन - यापन चाहता है। वह दिन - ब - दिन, पीढ़ी - दर - पीढ़ी बेहतरीन जीवन जीना चाहता है। समस्याओं से मुक्त और सुविधाओं से युक्त व्यवस्थित जीवन के लिए स्वयं सरकार को बनाता है। इसी क्रम में सरकार का श्रेष्ठतम रूप लोकतंत्र की स्थापना करता है और उसी को प्राथमिकता देता है।

मानव सामाजिक एवं राजनैतिक प्राणि ही नहीं, सृष्टि का श्रेष्ठतम जीव भी है। इसी कारण श्रेष्ठ जीवन जीने के लिए श्रेष्ठतम उपलब्धियों के अन्वेषण में लगा रहता है। जो कल्पना में स्वर्गिक अनुभूति है, उसे वह निजी तथा लौकिक घरातल पर प्राप्त करने के लिए निरंतर प्रयत्नशील रहता है। इसी सिलसिले में जीवन के उत्तम तथा अनुरंजित करनेवाले तत्वों का अन्वेषण करता है, जिसे आज कल हम 'साहित्य' कहते हैं, वह उसी अन्वेषण तथा सतत साधना का परिणाम ही है।

“ साहित्य में साथ होने का भाव पाया जाता है। ”³ ज्ञान राशि का संचित कोश ही का नाम साहित्य है। सब तरह के भावों को प्रकट करने की योग्यता रखने वाली और निर्दोष होने पर भी यदि कोई भाषा अपना निज का साहित्य नहीं रखती तो वह, रूपवती भिखारिनी की तरह, कदापि आदरणीय नहीं हो सकती। उस की शोभा, उस की श्रीसम्पन्नता, उस की मान - मर्यादा उस के साहित्य पर ही अवलंबित रहती है। जाति - विशेष के उत्कर्षापकर्ष का, उस के उच्च - नीच भावों का, उस के धार्मिक विचारों और सामाजिक संगठन का, उस के ऐतिहासिक घटना - चक्रों और राजनीतिक स्थितियों का प्रतिबिम्ब देखने को यदि कहीं मिल सकता है तो उसके ग्रन्थ साहित्य में मिल सकता है। सामाजिक शक्ति या सजीवता, सामाजिक अशक्ति या निर्जीवता और सामाजिक सभ्यता तथा असभ्यता का निर्णायक एकमात्र साहित्य है। जिस जाति - विशेष में साहित्य का अभाव या उस की न्यूनता आपको दीख पड़े, आप निःसन्देह निश्चय समझिए कि वह जाति असभ्य किंवा अपूर्ण है। जिस जाति की सामाजिक अवस्था जैसी होती है उस का साहित्य भी वैसा ही होता है। जातियों की क्षमता और सजीवता यदि कहीं प्रत्यक्ष देखने को मिल सकती है तो उन के साहित्य - रूपी आईने ही मिल सकती है। इस आईने के सामने जाते ही हमें यह तत्काल मालूम हो जाता है कि अमुक जाति की जीवन - शक्ति उस समय जितनी या कैसी है और भूतकाल में कितनी और कैसी थी। आप भोजन करना बन्द कर दीजिए या कम कर दीजिए, आपका शरीर क्षीण हो जाएगा और अचिरात् नाशोन्मुख होने लगेगा। इसी तरह आप साहित्य के रसास्वादन से अपने मस्तिष्क को वंचित कर दीजिए, वह निष्क्रिय होकर धीरे - धीरे किसी काम का न रह जायेगा।

बात यह है कि शरीर के जिस अंग का जो काम है वह उससे यदि न लिया जाय, तो उस की वह काम करने की शक्ति नष्ट हुए बिना नहीं रहती। शरीर का खाद्य भोजनीय पदार्थ है और मस्तिष्क का खाद्य साहित्य। अतएव यदि हम अपने मस्तिष्क को निष्क्रिय और कालान्तर में निर्जीव - सा नहीं कर डालना चाहते तो हमें साहित्य का सतत सेवन करना चाहिए और उस में नवीनता तथा पौष्टिकता लाने के लिए उस का उत्पादन भी करते जाना चाहिए। पर, यदि रखाए, विकृत भोजन से जैसे शरीर रूग्ण होकर बिगड़ जाता है उसी तरह विकृत साहित्य से मस्तिष्क भी विकाराग्रस्त होकर रोगी हो जाता है। मस्तिष्क का बलवान् और शक्तिशाली होना अच्छे साहित्य पर ही अवलंबित है। अतएव यह बात निश्चिंत है कि मस्तिष्क के यथेष्ट विकास का एकमात्र साधन अच्छा साहित्य है। यदि हमें जीवित रहना है और सभ्यता की दौड़ में अन्य जातियों की बराबरी करना है तो हमें श्रमपूर्वक, बड़े उत्साह से, सुसाहित्य का उत्पादन और प्राचीन साहित्य की रक्षा करनी चाहिए, और यदि हम अपने मानसिक जीवन की हत्या करके अपनी वर्तमान दयनीय दशा में पड़ा रहना ही अच्छा समझते हैं तो आज ही साहित्य - निर्माण के आडंबर का विसर्जन कर डालना चाहिए। साहित्य सृजन - सभ्यता का सूचक है। साहित्य जीवन को सुंदर बनाता है। वह केवल भाव - भाव का भाषा - भाषा का, ग्रंथ - ग्रंथ का मिलन नहीं, अपितु मानव के साथ मानव का, अतीत के साथ वर्तमान का, दूर के साथ निकट का अत्यंत अंतरंग मिलन भी है जो साहित्य के अतिरिक्त अन्य किसी के द्वारा संभव नहीं। सारांशतः यही कहा जा सकता है कि जीवन की भावमयी व्याख्या का नाम ही साहित्य है जिसका स्वरूप कलात्मक और उद्देश्य लोक हित संपादन है। रागात्मक होने के कारण वह ज्ञान के साहित्य से सर्वदा झक, स्वतंत्र और सत्ताशाली है। वस्तुतः साहित्य मानव - जीवन की व्याख्या है। मनुष्य और उस का जीवन ही साहित्य का मूल विषय है। मनुष्य के सुख - दुःख, आशा - विश्वास, हर्ष - विषाद आदि साहित्य में अभिव्यक्ति पाते हैं। डी.पी.मुकर्जी के अनुसार " साहित्य सामाजिक उपज है, अतः उसका अध्ययन की सार्वभौम पद्धति की आवश्यकता पर बल देते हैं। संचार का माध्यम होने के कारण साहित्य से संपूर्ण सामाजिक प्रक्रिया का बोध संभव है।"⁴ प्रसिद्ध उपन्यासकार जैनेंद्र कुमार ने समाज को साहित्य की प्रेरक - शक्ति माना है " साहित्य अब प्रेरक भी है, झलकता ही नहीं, वह चलता भी है। हमारे मनोरथ और संकल्प भी उस में भरे रहते हैं।"⁵ साहित्य मात्र समाज के बाहरी रूप का ही नहीं, समाज की आंतरिक प्रक्रियाओं का लेखा - जोख भी है। साहित्य से समाज विज्ञान का गहरा संबंध है।

समाज विज्ञान मानव जीवन के बदलते हुए मूल्यों को पहचानना सिखाता है तथा सार्वकालिक, सार्वभौमिक, सर्वजनीन तथ्यों के साथ राष्ट्र की एकता, अखंडता, धर्मनिरपेक्षता तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक तथ्यों को भी व्यख्या करती है। इस विषय को ध्यान में रखकर प्रबुद्ध समीक्षक डॉ. नगेन्द्र जी भारतीयता के संदर्भ में भारतीय साहित्य की नवव्याख्या यों प्रस्तुत करते हैं।

“ जिस प्रकार अनेक धर्मों, विचारधाराओं और जीवन प्रणालियों के रहते हुए भी भारतीय संस्कृति की एकता असंदिग्ध है, इसी प्रकार और इसी कारण से अनेक भाषाओं और अभिव्यंजना पद्धतियों के रहते हुए भी भारतीय साहित्य की मूल एकता का अनुसंधान सहज संभव है। ”⁶ इस प्रकार सामाजिक शक्ति या सजीवता, सामाजिक अशक्ति या निर्जीवता और सामाजिक सभ्यता तथा असभ्यता का निर्णायक साहित्य ही है।

संदर्भ :

1. Society – Vaciver - p.no.5
2. एफ. एच. गिडिंग्स, प्रिंसिपल ऑफ सोशियोलॉजी - पृ. 5
3. सहितस्य भाव : इति साहित्यं
4. सहितस्य भाव : इति साहित्यं
5. साहित्य का श्रेय और प्रेय, जैनेन्द्र कुमार - पृ. 25
6. भारतीय साहित्य की मूलभूत एकता, डॉ. नगेन्द्र - पृ. 28
